ICSSR Sponsored
ISSN: 2319-9997
Journal of Nehru Gram Bharati University, 2025; Vol. 14 (II):448-459

जनकीहरणम् महाकाव्य मे रस विमर्श

विपिन कुमार

संस्कृत विभाग–"नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय जमुनीपुर कोटवा, प्रयागराज–221505, उत्तर प्रदेश।

ईमेल : vm9565033@gmail.com

Received: 29.07.2025 Revised: 28.10.2025 Accepted:05.11.2025

रस निरूपण

परिचयः–

रस सहृदय का हृदय स्थित वासना की आनन्दमय परिणति है। भारतीय साहित्य समीक्षकों ने काव्य से प्राप्त होने वाले विगलित–वेद्यान्तर–शून्य सकल प्रयोजन मौलिभूत ब्रह्मानन्द सहोदर अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द की अनुभूति का विवेचन रसचर्वणा के रूप में किया है। काव्य तथा नाट्य में रस की अभिव्यक्ति उनकी सर्वश्रेष्ठता के लिए अत्यन्त अपेक्षित है। अलंकार की स्थिति तो केवल कटक–कुण्डल आदि के समान गौण है। कटक–कुण्डल आदि मनुष्य के उत्कर्षाधायक धर्म तो हो सकते है, जीवनधायक नहीं। कटक–कुण्डल आदि अलंकारों को धारण करने वाला व्यक्ति बड़ा आदमी माना जा सकता है, पर उनके हटा देने पर या उनसे रहत व्यक्ति मनुष्य न रहे यह नहीं हो सकता है। शरीर का जीवनधायक तत्व आत्मा है, इसी प्रकार काव्य का जीवनधायक तत्व रस है। रसमय काव्य की सृष्टि एवम् तदौचित्य की साधना श्रेष्ठ कवि का चरम लक्ष्य है।

रस की महत्ता के विषय में आचार्य भरतमुनि का कथन है'

"न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवतति।"[1]

अर्थात कोई अर्थ रस के बिना प्रवृत्त नहीं होता है। आचार्य विश्वनाथ रसात्मक वाक्यों में ही काव्यत्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं–

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"[2]

आचार्य महिम भट्ट ध्वनि का विरोध किन्तु रस का समर्थन करते हुए लिखते हैं–

"काव्यरम्भस्य साफल्यमच्छता तत् प्रवृति निबन्धनभाव–

नेनास्य रसालकत्वमवश्यमभ्युपगन्तव्यम्।[3]

पं० राजजगन्नाथ का उत्तम काव्य के विषय में मत है–

"तत्र ध्वनेरूत्तभोत्तमस्य +++।" एवम्

पंचात्मके ध्वनौ परमरमणीयतया रसध्वनेः।

तदात्मा रसः तावत् अभिधीयते।[4]

रस सिद्धान्त के प्रथम प्रवर्तक आचार्य भरत मुनि रस–निष्पत्ति प्रक्रिया का विवेचन करते हुए कहते हैं–

"विभावानुभावन्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।[5]

सीता, राम आदि श्रृंगार रस के 'आलम्बन विभाव' कहलाते हैं। चाँदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के द्वारा इस रति का उद्दीपन विभाव कहा जाता है।

अपने–अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से सीता–राम आदि के भीतर उद्‌बद्ध रति आदि रूप स्थायिभाव को वाह्यरूप में जो प्रकाशित करता है। वह रत्यादि का कार्यरूप, काव्य और नाट्य में अनुभाव के नाम से जाना जाता है।[6]

"चित्तवृत्ति विशेषश्च रसः।[7]

रसों की संख्याः–

आचार्य भरतमुनि के अनुसार मूल रस चार ही है– श्रृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। उनका कथन है– "श्रृंगार से हास्य, रौद्र से करूण, वीर से अद्‌भुत तथा वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति रस की उत्पत्ति हुई।[8]

कालान्तर में उद्‌भट,[9] अभिनव गुप्त,[10] हेमचन्द्र[11] मम्मट[12] रामचन्द्र गुणचन्द्र,[13] विद्यानाथ,[14] पंडित राज जगन्नाथ,[15] विश्वनाथ,[16] आदि आचार्यों ने नवम् रस 'शान्त' की स्थापना की। यद्यपि नवीन रसों की कल्पना एवं उद्‌भावना अन्य विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार की है, तथापि उन रसों के विषय में कोई प्रामाणिक धारणा प्रतिष्ठापित नहीं की गयी है। महाराज भोज एवं विश्वनाथ विराज आदि आचार्यों ने दशम् रस 'वात्सल्य' भी स्वीकार किया है, परन्तु मम्मट आदि विद्वानों के अनुसार 'वात्सल्य' रस का स्थायीभाव 'स्नेह' रति का ही विशेष रूप होने के कारण यह श्रृंगार रस के ही अन्तर्गत है। अन्तर केवल यह है कि छोटों के प्रति प्रेम भावना स्नेह तथा उन रसों के पृथक–पृथक वर्ग निर्धारित किये है। ये देवता पौराणिक परम्परा के अनुसार स्वीकार किये गये है। आचार्य भरत[17] हेमचन्द्र,[18] मम्मट[19] तथा विश्वनाथ[20] कविराज ने रसों की गणना करते हुए सर्व प्रथम श्रृंगार रस का उल्लेख किया है। रसों का यह क्रम–निर्देश रस गत श्रेष्ठता पर आधारित है। विद्वज्जन रस को उत्तमता से पृथक स्वीकार नहीं करते। भरतमुनि का मत है–

"यत्किंचिलोके शुचिमेध्यं दर्शनीयं वा तंछृंगारेण अनुमीयते।"[21]

अभिप्राय यह है कि लोक में यत्किंचित् पवित्र, उत्तम, उज्जवल अथवा दर्शनीय है अर्थात जिसमें सरस एवं हृदयग्राही विचारयुक्त वर्णन आदि है– यह सब शृंगार रस के द्वारा ही सम्भाव्य है।

महाकवि कुमारदास की दृष्टि में रस का महत्वः–

काव्य का प्राण रस है और रस का अन्तःसार चमत्कार। रसहीन काव्य अकाव्य है। अतएव कहा गया है कि– 'रसे सारः चमत्कारः।' अर्थात् रस का जीवन चमत्कार किंवा चर्वणानुभूति है। कुमारदास का काव्य, रससिक्त और कवि स्वयं रसनिबन्धन में सिद्धहस्त है। "जानकीहरणम्" महाकाव्य में प्रायः समस्त रसों का निबन्धन किया गया है। किन्तु शृंगार रस इसमें अंगीरूप में निबन्धित है।

प्रस्तुत महाकाव्य का अंगी रस–शृंगार :–

महाकवि कुमारदास कृत "जानकीहरणम्" शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है, किन्तु साथ ही इसमें अन्य रसों की गौण रूप में यथास्थान मनोरम अभिव्यंजना हुई है। काव्यशास्त्र विषयक शास्त्रीय नियमानुसार भी महाकाव्य में शृंगार, वीर तथा शान्त में से कोई एक रस अंगी तथा अन्य रसों के अंग रूप में व्यंजित होने का विधान है। यथा–

"शृंगारवीरशान्तनामेकोऽंगी रस इष्यते। अंगानि सर्वेऽपि रसाः।"[22]

साहित्य मानव मन की भावों की अभिराम अभिव्यक्ति है। मनुष्य के लौकिक जीवन में यह तथ्य सर्वत्र दष्टिगोचर होता है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत सदैव एक ही रस नही बना रहता है। प्रत्येक घटना किसी न किसी देश काल में ही घटित होती है। इन घटनाओं के संग्रथन का नाम ही जीवन है। शैशवावस्था से लेकर मरणावस्था तक जीवन के विभिन्न सोपानों को क्रमशः पार करता हुआ मनुष्य अपनी अवस्था तथा परिस्थितियों के अनुसार विविध रसों का अनुभव करता है।

'जानकीहरणम्' महाकाव्य में कवि अंगी रस शृंगार के साथ अन्य अंग रसों यथा– हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा वात्सल्य रस की साधना में भी सफल हुआ है। श्रंगार रस का स्थायीभाव 'रति' है। पुरूष–स्त्री, नर–नारी अथवा नायक–नायिका के हृदय में 'रति' अर्थात् प्रेम भाव सदैव प्रसुप्तावस्था में बीज रूप में विद्यमान रहता है। यही रति रूप स्थायीभाव कारण–विशेष के उपस्थित होने पर तथा विशिष्ट परिस्थितियों के विद्यमान होने पर विभाव–अनुभाव तथा संचारीभावों के संयोग से क्रमशः जाग्रत, उद्दीप्त तथा परिपुष्ट होकर शृंगार रस के रूप में परिणत हो जाता है। वस्तुतः कामभावना से सकल जाति के सुलभ तथा परिपुष्ट होकर शृंगार रस के रूप में परिणत हो जाता है। वस्तुतः कामभावना से सकल जाति के सुलभ तथा अत्यन्त परिचित होने के कारण ही यह सबके प्रति मनोहारी है।[23] इसलिए सर्वप्रथम 'शृंगार' की गणना की जाती है।

शृंगार रस के दो भेद होते हैं विप्रलम्भ तथा संभोग। विप्रलम्भ की परिभाषा

करते हुए आचार्य विश्वनाथ का कथन है–

"जहाँ अनुराग तो अति उत्कृष्ट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता उसे विप्रलम्भ (वियोग) कहते हैं। वह विप्रलम्भ पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करूण– इन भेदों से चार प्रकार का होता है।"[24]

सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक–नायिका का समागम से पूर्व की अवस्था का नाम 'पूर्वराग' है।[25]

यह पूर्वराग ३ प्रकार का होता है– नीली, राग, कुसुम्भ राग, तथा मंजिष्ठा राग। नीली राग वह है जो वाह्य चमक–दमक अधिक न दिखाये परन्तु हृदय से कदापि दूर न हो। कुसुम्भ राग शोभित तो अधिक होता है, परन्तु समाप्त हो जाता हैं मंजिष्ठा राग उस प्रेम को कहते हैं जो समाप्त भी न हो तथा शोभित भी बहुलता से हो।[26]

वस्तुतः वियोग की अनुभूति के बिना संयोग श्रृंगार परिपुष्ट नहीं होता। कषायित वस्त्रादि रंग में भलीभाँति रंजित होते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी वस्त्रादि को रंग रंजित करने के पूर्व उसी रंगानुकूल किसी वस्तु में अथवा अनार के छिलकों के क्वाथ में रंगकर तत्पश्चात् उस रंग में रंगने से उस वस्त्रादि के रंग में चमक, स्वच्छता, एवम् परिपक्वता का सन्निवेश हो जाता है। उसी प्रकार पूर्व रागादि के अनन्तर सम्पन्न संभोग अपेक्षाकृत अधिक चमत्कृत होता है। यथा–

"न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।

कषयिते हि वस्त्रादौ, भूयान्रागौ विवधति।।"[27]

बिना प्रेम के विरह की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, इसी तरह बिना विरह के प्रेम का भी अस्तित्व नहीं है। जहाँ प्रेम है वहाँ विरह है। प्रेम के अंकुर को विरह जल ही पल्लवित करता है। प्रेम दीपक की बाती को यह विरह ही उकसाता रहा है।[28]

संभोग श्रृंगार वह कहलाता है जिसमें परस्पर प्रेम में अनुरक्त नायक–नायिका दर्शन, स्पर्श आदि करते हैं। चुम्बन आलिंगन आदि इसके अनन्त भेदों के अगणित होनें के कारण इसका 'संभोगश्रृंगार'– यही एक माना गया है। षडऋतु वर्णन, सूर्य तथा चन्द्रमा का वर्णन, उदय, अस्त का वर्णन, जल विहार, वन विहार, प्रभात, मद्यपान, रात्रिक्रीड़ा, चन्दनादि लेपन, भूषणधारण तथा अन्य मत्किंचित् स्वच्छ उज्ज्वल, ग्राह्य स्वच्छ उज्जवल, ग्राह्य वस्तुएं हैं, उन सबका वर्णन श्रृंगार रस में होता है।[29]

'जानकीहरण' महाकाव्य श्रृंगार रस के विप्रलम्भ तथा सम्भोग– इन दोनों ही पक्षों के सांगोपांग चित्रण का सफल निदर्शन है। इसमें श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। पहले नायक–नायिका गत विप्रलम्भ श्रृंगार के पूर्वराग का वर्णन, तत्पश्चात उनके सम्भोग श्रृंगार की मनोहारी अभिव्यंजना महाकवि कुमारदास को 'रससिद्ध कवीश्वर' के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

'जानकीहरणम्' महाकाव्य के नायक जगत्पति विष्णु के अवतार

लोक–रंजक राम तथा नायिका सीता है। समाज के समक्ष मर्यादित प्रेम का उज्जवल आदर्श उपस्थित करने वाले नायक राम का चरित्र वाल्मीकीय रामायण आदि ग्रन्थों में गाम्भीर्य, क्षमा, विनय, स्वाभिमान, दृढ़वत की भावना तथा शालीनता एवम् कर्तव्यपरायणतादि गुणों से युक्त चित्रित हुआ है। साहित्य शास्त्रीय भाषा में राम धीरोदात्त नायक है तथा सीता स्वकीया प्रकार की मुग्धा नायिका सीता के प्रति राम का प्रेम वासनामात्र नहीं है, प्रत्युत् धर्म द्वारा अनुप्राणित एवं मर्यादित दाम्पत्य प्रेम है।

दाम्पत्य प्रेम में आत्मसमर्पण आदि मृदु भावों के संयोग के कारण वासनात्मक काम का अंश अति न्यून रह जाता है। वस्तुतः काम तथा प्रेम का कामुकता एवम् विलासिता के साथ नाममात्र का सम्बन्ध है। महाकवि कालिदास ने 'मेघदतं' में कामीयक्ष को सच्चे प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया है। शृंगार रस के अन्तर्गत प्रेम का पूर्ण परिपाक एवम् प्रकर्ष होता है। शृंगार रस परक काव्य की स्थिति में जीवन सरस दृष्टिगोचर होता है। नर–नारी के आकर्षण प्रत्याकर्षण में अद्वैत–स्थापना की इच्छा का स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। महाकवि भवभूति ने दाम्पत्य अद्वैत का सुन्दर वर्णन किया है। स्त्री पुरूष के काम वासनामय हृदय की परस्पर रमणेच्छा का नाम 'रति' है।

यही 'रति' शृंगार रस का स्थायी भाव है। पारस्परिक भाव होने के कारण यह नायक तथा नायिका दोनों में स्थित होता है। शृंगार रस के आलम्बन विभाव का आश्रय लेकर तथा उद्दीपन विभाव से उद्दीप्त होकर 'रति' स्थायीभाव उत्कर्ष को प्राप्त होता है। परस्त्री तथा अनुराग शून्य वैश्या के अतिरिक्त अन्य नायिकायें तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन, विभाव एवं चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं।[30] विक्षेप कटाक्षादि इसके अनुभाव तथा उग्रता, मरण, आलस्य एवम् जुगुप्सा को छोड़कर शेष निर्वेदादि संचारीभाव शृंगार रस की निष्पत्ति में सहायक होते हैं।[31]

महाकवि कुमारदास की कृति 'जानकीहरणम्' में शृंगार रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। महाकवि को जहां भी अवसर प्राप्त हुआ, उन्होंने उसका सम्यक रूपेण उपभोग किया है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में सम्राट दशरथ की महिषी कौशल्या के अद्वितीय शारीरिक सौन्दर्य एवम् अंग लावण्य वर्णन से आरम्भ में ही यह आभासित होने लगता है कि कवि शृंगार रस का सिद्ध साधक है, तदन्तर तृतीय सर्ग में रानियों के साथ राजा दशरथ के उद्यान विहार एवम् जल केलि वर्णन के पश्चात सप्तम्–अष्टम सर्ग में नायक राम एवं नायिका सीता के पूर्वराग से परिपुष्ट सम्भोग शृंगार एवं दाम्पत्य–प्रेम के चित्रण में शृंगार रस अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हो गया है। षोडस् सर्ग में राक्षस राक्षसियों की शृंगारिक चेष्टाओं तथा मनोभावों का सुन्दर वर्णन हुआ है।

म्हाकवि कुमारदास महारानी कौशल्या के नख–शिख सौन्दर्य–वर्णन का श्री गणेश नखों की सुन्दरता से करते हुए कहते हैं–

"महेन्द्रकल्पस्य महायदेव्याः स्फुरन्मयूखा सरणिर्नखानाम्।

पादद्वयान्ते जितपद्मकोशे मुक्तेव मुक्ताविततिविरेजे।।[32]

इन्द्र के समान दशरथ की रानी (कोशल्या) के कमल को लजाने वाले दोनों पैरों के अन्त में नखों की पंक्ति से जो प्रभा निकल रही थी वह ऐसी लगती थी जैसे उनके पूजन के हेतु किसी ने बहुत से मोती बिखेर दिये हों।

साम्राज्ञी की सुन्दर जंघाओं का वर्णन करते हुए महाकवि ने नारी के सौन्दर्य निर्माण की एक प्रसिद्ध विकट समस्या को निम्नलिखित श्लोक में उपस्थित किया है– ऐसा डॉ० कीथ का मत है–

"दृष्टौ हतं मन्मथबाणपातैः शक्यं विधातुं न निमील्य चक्षुः।

उरू विधात्रा न कृतौ कथं तावित्यास तस्यां सुमेतेर्वितर्कः।[33]

बुद्धिमान लोग इस सन्देह में थे कि आखिर ब्रह्मा ने इनकी (कौशल्या की) जाँघों को बनाया तो कैसे बनाया। क्योंकि यदि ते आँखे खोलकर बनाते तो उनकी आँखे कामदेव के बाण से विद्ध हो जाती और, फिर आँख मूंदकर वे बना ही कैसे सकते थे।

सन्देह के कारण उत्पन्न विचार का नाम वितर्क है।[34] इसके पश्चात् गुण वृद्धि तथा निषेध शब्दों के चमत्कार पूर्ण प्रयोग के माध्यम से कटि सौन्दर्य का चित्रण दर्शनीय है–

"तथा द्वतं तस्य पृथृत्वं यथाऽभवन्मध्यमतिक्षयिष्णु।

इतीव बद्धा रशनागुणेन श्रोणी पुनर्वृद्धिनिषेधहेतोः।।[35]

कटि के पश्चात उदर, भुजाओं, अधरों, एवं मुख लावण्य का वर्णन कवि ने विविध उपमानों को ग्रहण करते हुए प्रस्तुत किया है। कवि के मतानुसार स्थल पर कौशल्या का मुख ही सर्वश्रेष्ठ है–

"कान्तिश्रिया निर्जितपद्मरागं मनोज्ञगन्धं द्वयमेव शस्तम्।

नवप्रबुद्धं जलजं जलेषु स्थलेषु तस्या वदनारविन्दम्।।[36]

शृंगार के विविध अंगों यथा– काम केलि, अंगनाओं के साथ विहार, जलक्रीड़ा आदि वर्णनों से युक्त तृतीय सर्ग में कामोद्दीपन में सर्वाधिक समर्थ एवं सफल ऋतुराज बसन्त के वर्णन के कारण शृंगार की अतिशय प्रभावशाली एवं मनोहारी अभिव्यंजना हुई है। बसन्त ऋतु का आगमन होने पर यद्यः स्फुटित नूतन पाटल–कालिकाओं को देखकर कवि की कमनीय कल्पना है–

"प्रादुर्बभूवर्नवकुड्यलानि स्फुरन्ति कान्त्या करवीरजानि।

प्रवासिना शोणितपाटलानि तीरीफलानीव मनोभवस्य।।[37]

प्रवासी जनों के मन में स्थित मनोभाव अर्थात् कामदेव के तीक्ष्ण फलों से युक्त वाणों के समान प्रतीत होने वाले पाटल की रक्तवर्णा नव कलिकायें प्रस्फुटित

होने लगी। बसन्त ऋतु के मादक प्रभाव के कारण वन्ध्य होते हुए भी अशोक वृक्ष अंगनाओं के आलक्त प्रस्फुटित रन्जित एवं नूपुरों से झंकृत चरणों के प्रहार से प्रस्फुटित नूतन पुष्पांकरों से युक्त होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था। मानों अंगस्पर्श के कारण हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठा है।[38] राजा दशरथ ने उस उद्यान में प्रवेश किया जिसमें भ्रमणशील भ्रमरों के समूह गुंजार कर रहे थे, जहाँ प्रस्फुटित रक्तवर्ण पुष्पों से युक्त पंक्ति बद्ध करवीर वृक्ष से सुशोभित थे तथा जो उद्यान कामदेव की समरभूति के समान प्रतीत हो रहा था।[39] राजा दशरथ उन लताकुंजों में सुन्दरी युवतियों के साथ एकान्त में विहार करने लगे। विहार करते हुए राजा दशरथ द्वारा अपनी पत्नी के चरणों को लाक्षारस रंजित किये जाने की श्रृंगारिक किया जाने की श्रृंगारिक क्रिया तथा सपत्नी के ऊपर उसी प्रतिक्रिया का सुन्दर वर्णन करते हुए कवि का कथन है–

"पत्या परस्या नु विधीयमाने विलासवत्याश्चरणान्तरागे।

अन्यत्र युक्तोऽपि बबन्ध रागं लाक्षारसस्तत्प्रतिपक्षनेत्रे।।"[40]

इसके पश्चात् नृपति द्वारा कमनीय अंगों वाली कामिनी का आलिंगन किये जाने का वर्णन कवि ने किया है। एक सुन्दर कामिनी जब कठिन पलाश के वृक्ष से गुलदस्ता बनाने के लिए फूल तोड़ रही थी तो उसकी रूचिर हथेलियों की ललाई पलाश में आ गई, उस समय उसके पति ने मृदु मुस्कान के साथ उसका आलिंगन किया।

उपवन विहार के पश्चात् वरांगनाओं से आवृत राजा दशरथ जलक्रीड़ा की ओर अभिमुख होते हैं। जल केलि वर्णन में कवि ने अधिक कामुक एवम् सविलास, श्रृंगारयुक्त चेष्टाओं का विनियोग किया है। जैसा कि निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट है–

"पद्माकरो वारि विगाहमानं कामीव रामाजनमूरूदध्वनम्।

वीचीकराग्रेण नितम्बभागे व्यास्फालयामास शनैः सशब्दम्।।"[41]

जल विहार के समय सरोवर में मीन से भयभीत हुई – स्त्री में 'रति' स्थायीभाव की पुष्टि हेतु आविर्भूत संत्रास रूप संचारीभाव श्रृंगार रस को अभिव्यक्त कर रहा है।

यथा–

"मत्स्येन चीनांशुकपृष्ठलक्ष्यकांचीमण्ग्रासकुतूहलेन।

आघ्राय मुक्तोपनितम्बमेका संत्रासभुग्नभ्रु चिरं चकम्पे।।"[42]

रति क्रीड़ा में किये गये नखक्षतों का उल्लेख कवि ने किया है–

"अन्या पुराणं निजमेव वीचिविक्षालितांगेऽथिपतेः पृथिव्याः।

पदं नखस्य स्फुटकुङ्कुमांक दृष्टा परं संशयमाललम्बे।।[43]

जल केलि के पश्चात् प्रासाद में निवास करते हुए नृपति दशरथ अपनी प्रमदाओं के सम्मुख सूर्यास्त का वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में जो कि 'रति' रूप स्थायीभाव को अधिक उद्दीप्त करने वाला है, करते हुए कहते हैं–

"सकुंकुमस्त्रीकुचमण्डलद्युतिः प्रवासिनां चेतसि चिन्तयातुरे।

निधाय तापंतपनः पतत्यसौ विलोलवीचापनरान्तसागरे।।[44]

यह सूर्य, जो स्त्रियों के, केसर से रंजित गोलस्तन के सदृश शोभायमान है, परदेसियों के चित्त में तपन छोड़कर, तरंगों से आन्दोलित पश्चिमी समुद्रान्त में डूब रहा है।

अंग रस

हास्य रस :–

हास्य रस का स्थायीभाव 'हास्य' है। संस्कृत काव्यों में प्रायः हास्य का अभाव ही है। 'जानकीहरणम्' महाकाव्य भी इससे मुक्त नही है। किन्तु राजा दशरथ द्वारा अपनी वृद्धावस्था के एक हास्य–चित्रण में हलका–सा हास्य देखा जा सकता है–

"जीवते जीर्णवयसः प्रत्याशा में मुमूर्षतः।

तिर्यग्विकम्पितैर्मूर्ध्नो नास्तीति प्रथर्यान्नव।।"[45]

वृद्धावस्था में केश–पाण्डुर कम्पमान शिर मानो हिल–हिल कर कहता है कि अब जीने के आशा नहीं।

करूण रस :–

करूण रस का स्थायीभाव 'शोक' है। संस्कृत साहित्य में "करूण्यं भवभूतिरेव तनुते" के द्वारा भवभूति को करूणरसावतार ही माना जाता है। क्योंकि उनके काव्य में "अपि ग्रावा रोदित" के द्वारा प्रस्तर भी रूदन करते दिखलायी देते हैं, पर कुमारदास ने भी अपने महाकाव्य में करूण रस की जो अभिव्यंजना की है उसमें हृदय को पिघला देने की पूर्ण क्षमता है। 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में श्रवणकुमार का विलाप तथा लंकादहन में राक्षसियों के करूण क्रन्दन में करूणा की पूर्ण अनुभूति होती है। दशरथ के बाण–प्रहार से विह्वल श्रवण के अतिक्रन्दन का मार्मिक उदाहरण द्रष्टव्य है। यथा–

"व्रती विनाथो विगतापराधः स्मर्तव्यदृष्टेः पितुरन्धयष्टिः।

इत्येषु किं निष्करूणेन कश्चिदवध्यभावे गणितो न हेतुः।।[46]

श्रवण के मार्मिक दृश्य का अवलोकन करके स्वयं महाराज दशरथ रोने लगते हैं और चित्रलिखित से ठगे रहते हैं–

"वाष्पायमाणो बहुमानपात्रं यमप्रभावो यमिनां ददर्श।[47]

रौद्र रस :–

इस रस का स्थायीभाव 'क्रोध' है। कुमारदास अपने महाकाव्य में युद्ध स्थलों में वीरों के परस्पर आक्षेप पूर्ण वचनों में रौद्र का सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रकार सीता के अन्वेषण को भुला देने वाले सुग्रीव को फटकारते हुए लक्ष्मण के उपालम्भ में रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। सीताहरण में राम को पुकारती सीता को भयाक्रान्त करने हेतु रावण की निम्न उक्ति इसका प्रमाण है। यथा–

"सारंगाक्षि शरस्तस्य केवलं तु खरे खरः।

दूषणे दूषणो भद्रे न त्रिलोक्या विभौ रणे।[48]

वीर रस :–

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है। 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में अनेकत्र युद्धों का उग्र वर्णन है। जिनमें वीर रस की अभिव्यंजना को विकास देने हेतु कवि को बहुशः अवसर मिला है। मृगया विहार, मारीच एवं सुबाहु के साथ युद्ध, अशोकवाटिका–विध्वंस तथा राक्षसों के साथ हनुमद्युद्ध, बालि सुग्रीव युद्ध इत्यादि अनेक स्थल हैं जहाँ वीर रस की सुन्दर अभिव्यंजना है। राम–रावण युद्ध में रावण की वीरता का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है–

"मखैरसक्तं दशभिर्दशाननो नदन् तटित्सन्निभहेमभूषणः।

युगान्तमेघप्रतिमो महेषुभिः ततान धाराभिरिवान्तरं दिवः।।[49]

भयानक रस :–

'जानकीहरणम्' महाकाव्य में भयानक रस का बहुशः पूर्ण चमत्कृति के साथ पल्लवन हुआ है। जिनमें परशुराम का क्रोधोग्र रूप, भयंकर रूपधारिणी ताड़का, कुम्भकर्ण की विशालकाय की भीषणता आदि के वर्णनों में तो भय को भी भीति लग सकती है। जानकीपुरी में क्रुद्ध परशुराम का स्वरूप दर्शनीय है–

"भुजेऽतिभीमे सशरं निधाय वामे निधनावहं द्विषाम।

करेऽपरस्मिन् परदुर्गपरागं परं स विभ्रत्परशुं परसुहा।।[50]

वीभत्स रस :–

वीभत्स रस का स्थायीभाव 'जुगुप्सा' है। वीभत्स रस का अवसर इस काव्य में बहुत ही न्यून है। युद्धोपरान्त रणस्थलों में मृत–शरीरों पर बैठे कौओं, गिद्धों आदि के द्वारा शवों को नोचते हुए वीभत्स का एक चित्र यथा–

"रक्षोवसापिशितपूरितकक्षिरन्ध्रः काकुत्स्थबाण हतहस्तिमुखाधिरूढः।

पर्यन्तलग्नरूधिराणि मृदुप्रणादस्तुण्डानि चायसगणों रदने ममार्ज।।[50]

अद्भुत रस :–

राम रावण के युद्ध में नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों के प्रयोग और उनसे उत्पन्न घटनाओं और दृश्यों में इस रस का आस्वादन सहृदयों को अवश्य प्रभावित करता है।

शान्त रस :–

शान्त रस का स्थायीभाव 'निर्वेद' है। इस रस का वर्णन 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में देवताओं द्वारा कृत–स्तुतियों में मनोहर रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त विश्वामित्र के आश्रम वर्णन में इसका सुन्दर परिपोषण हुआ है। यथा–

"विहंगपानाय महीरूहां तले निवेशिताम्भः परिपूर्णभाजनम्।

विशेषार्थाहितपुण्यवल्कलप्रताननम्रीकृतवृक्षमस्तकम्।।[51]

वात्सल्य रस :–

इस रस को संस्कृत साहित्य में रस न मानकर भावध्वनि में माना जाता है, 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में इसके स्वल्प स्थल ही है। रावण की भुजा से काँपते हिमालय पर पार्वती की गोद में बैठे कार्तिकेय अपने क्रीड़ाभेष को बचाने लगते हैं।[52] बालक राम की बाल क्रीड़ाओं में वात्सल्य का पुष्ट–पोषण देखने को मिलता है। राम के सलोने स्वभाव का एक सुन्दर दृश्य अवलोकनीय है। यथा–

"अयि दर्शय तित्कमुन्दुराद् भवतो पात्रमिति प्रजोदितः।

प्रविदर्शयति स्म शिक्षया नवकं दन्तचतुष्टयं शिशुः।।[53]

निष्कर्षतः 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में कवि के द्वारा प्रायः समस्त रसों की अच्छी प्रकार अभिव्यक्ति की गयी है, जो कि संस्कृत काव्य में एक विशिष्ट गरिमा का भाजन है।

सन्दर्भ

---

1 नाट्यशास्त्र अध्याय ६, पृष्ठ २७४,

2 साहित्य दर्पण, पृ० १६

3 व्यक्ति विवेक, प्रथम विमर्श पृ० ६७

4 श्रस गंगाधर, पृष्ठ ७८–७६

5 नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, पृष्ठ २७४। १६२६।

6 "उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लेके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।।
– आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण ३। १३२

7 नाट्य दर्पण, पृ० १६१

8 नाट्यशास्त्र ६। ३८–३६

9 काव्यालंकार सार संग्रह ४। ४ (४५) पृ० ५२

10 नाट्यशास्त्र अध्याय ६ पृ० २६८–२६६

11 काव्यानुशासन अध्याय २, सूत्र २, पृ० १०६
12 काव्य प्रकाश ४। १३५
13 नाट्यदर्पण ३। १११
14 तिंाप रूद्र यशोभूषण, रस प्रकरण, पृ० २२१
15 श्रस गंगाधर रस प्रकरण पृ० १२१
16 साहित्य दर्पण ३। १८२
17 नाट्यशास्त्र ६। १६
18 काव्यानुशासन २। २
19 काव्यप्रकाश ४। २६
20 साहित्य दर्पण ३। १८२
21 नाट्यशास्त्र, पृ० ६३
22 साहित्य दर्पण ६। ३१६
23 आचार्य हेमचन्द्र काव्यानुशासनम्, २।२ की वत्ति।
24 "यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीप्दमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।
स च पूर्वरागमानप्रवास करूणत्मकश्चतुर्धा स्यात्।। –साहित्य दर्पण ३। १७७।
25 "श्रवणादर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो यो प्राप्तो पूर्वरागः स उच्यते। – साहित्य दर्पण ३। १८८
26 साहित्य दर्पण ३। १६५–६७
27 साहित्य दर्पण, पृ० ११४, व्याख्याकार– श्री पं० शालग्राम शास्त्री।
28 श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, पृ० ४३, डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी।
29 साहित्य दर्पण, पृ० ११४, व्याख्याकार– श्री पं० शालग्राम शास्त्री।
30 साहित्य दर्पण, विमला हिन्दी व्याख्या सहित पृ० १०६
31 साहित्य दर्पण, विमला हिन्दी व्याख्या सहित पृ० १०६
32 जानकीहरणम् १। २७
33 वही १। २६
34 आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, विमला हिन्दी व्याख्या सहित पृ० १०४
35 जनकीहरणम् १। ३०
36 जनकीहरणम् १।३८
37 जानकीहरणम् ३।६
38 जनकीहरणम् ३।७
39 जानकीहरणम् ३।१४
40 जानकीहरणम् ३।१८
41 जनकीहरणम् ३।२०
42 जानकीहरणम् ३। ४६
43 जनकीहरणम् ३।५१

44 जानकीहरणम् ३। ६४

45 जनकीहरणम् १०। १४

46 जानकीहरणम् १। ७४

47 जनकीहरणम् १। ८५

48 जानकीहरणम् १०। ८१

49 जानकीहरणम् १६। ६

50 जानकीहरणम् ६। ६०

51 जनकीहरणम् ५। २

52 "परित्रस्ते गोपयति कृकताकुध्वजे सति।
कार्तस्वरमयं भेष भतुरत्संगरांगिनि।। —जानकीहरणम् २। ४५

53 जानकीहरणम् ४। ११

Disclaimer/Publisher's Note:

The statements, opinions and data contained in all publications are solely those of the individual author(s) and contributor(s) and not of JNGBU and/or the editor(s). JNGBU and/or the editor(s) disclaim responsibility for any injury to people or property resulting from any ideas, methods, instructions or products referred to in the content.